पार-प्रदर्शक होकर भी
पार-प्रदर्शक नहीं हैं आप !
दर्शक आपका दर्शन करता है
पर !
स्वभाव भाव दर्शित कब होता ?
दर्शक को
समुचित है यह
दुग्ध धवलतम है
किन्तु
दुग्ध की समग्र-सृष्टि
अपने उदरगत पदार्थ-दल को
स्व-पर समष्टि को
दर्शित-प्रदर्शित
कहाँ ? कराती है ?

दर्शक की दृष्टि को
अपनी भीतरी गहराई में
प्रविष्ट होने नहीं देती
उसमें
झुक कर झाँकने से
दर्शक को
अपना बिम्ब..... वह
अवतरित कहाँ दीखता ?
काश ! कुछ
झिल मिल झिल मिल
झलक जाये !
केवल ... आकार
किनारा .... छाया ....!



समग्र-स्वरूप साक्षात्कार कहाँ ?
केवल बस ! उस दास की दृष्टि
द्वार पर उदासीना
प्रवेश की प्रतीक्षा में
क्षीणतम श्वास में
आशा सँजोयी
रह जाती खड़ी
स्वयं भूल कर
बाहरी अचेतन स्थूल पर
अनिमेष दृष्टि गड़ी
इसीलिए
दुग्ध में मुग्ध लुब्ध नहीं होना ....!
वह स्वयं स्वभाव नहीं
स्वभाव प्रदर्शक साधन नहीं.....

किन्तु !
आर पार प्रदर्शक
अपने में अवगाहित होने
अवगाहक को
आह्वावान करता है
अवगाह-प्रदायक
अबाधित..... अबाधक .....!
वह शुद्ध, सिद्ध घृत है
सार है, अमृत है
उसमें झाँको
अपनी आँखों
यथावत् आँको
व्यष्टि समष्टि
समग्र सृष्टि
साक्षात्कार अक्षत..... धार ।
शाश्वत ..... सार .....!

❑❑❑

# मन की भूख मान

जैसे जैसे.....
सहज रूप से
विनीत ज्ञान का
विकास होता है
वैसे वैसे
मूल रूप से
मानापमान का
विनाश होता है
स्वाभिमान के
उल्लास विलास में
मृदुल ..... मार्दव
मँजुल हास में
विनय गुण का
अनुनय करता
अवनत विनयी
ज्ञान-दास होता है

परम-सत्ता का
परम उदास होता है
समर्पित होता है
सब इतिहास ....!
इति....हास होता है
भीगा भाव
प्रतिभास होता है
समुचित है वह
पल्लव, पत्रों, फूल-फलों के
विपुल दलों से, लदा हुआ है
धरापाद में, धरा माथ वह
महक सूँघता
अवनत पादप
आतप हारक
..... आप.....!

❑❑❑



# केली-अकेली

जीवन में एक
निरी भीतरी
घटना घटी है
जब से
मृदु-मँजुल
पूर्व अपरिचित
समता से मम ममता
मित्रता पटी है
अनन्त ज्वलन्त
अपूर्व-क्षमता
इसमें प्रकटी है
जब से प्रमाद-प्रमदा की
ममता तामसता
बहु भागों में बटी है

उसे लग रही
अटपटी है
प्रेम-प्यास .....!
घटती घटती
पूरी घटी है
और वह स्वयं
असह्य हो पलटी है
कुछ कुछ अधछुपी सी
अधखुली रिपुता रखती है
टेढ़ी-सी
दृष्टि धरी है
रोषभरी कुछ कहती सी
लगती है
अपलक लखती है मुझे ....!

क्या दोष है मुझ में ?
क्या हुई गलती है ?
अब तक मुझ पर
रुचिकर दृष्टि रही
आज ! अरुचिकर
दृष्टि ऐसी .....!
बनी कैसी यह ?
आप प्रेमी
यह प्रेयसी
अनन्य श्रेयसी
रूपराशि हो
कब तक रहेगी अब
यह दासी-सी
उदासिनी हो प्यासी
अब तक इसे
प्रेम मिला
क्षेम मिला

किन्तु इसके साथ .....!
यह अप्रत्याशित
विश्वासघात ..... !
क्यों हो रहा है
हे ! नाथ.....
जीवन शिखर पर
वज्रपात है यह !
बिखर जायगा सब !
आपत्ति से घिर आया जीवन !
आपाद माथ गात
शून्य पड़ गया है
हिमपात हुआ हो कहीं .....!
जम गया है



दीनता घुली आलोचना.....
प्रमाद की, ताने .... बाने
सुनकर
सुषमा समता ने
राजा की पट्टरानी सी
पुरुष को मौन देख कर
सौत-सी
थोड़ी-सी चिढ़ी
थोड़ी-सी मुड़ी उस ओर ....!
मौन तोड़ा है
पुरुष स्वयं विश्रान्त हैं
शान्त हैं
बोलेंगे नहीं
मौन तोड़ेंगे नहीं

और चिरकाल तक
मैं अकेली
सुरभित चम्पा
चमेली बनकर
पुरुष के साथ
करूँगी सानन्द केली !
पिला-पिला कर
अमृत-धार
मिला-मिला कर
सस्मित-प्यार .....!

❑❑❑

शान्त हुए हैं
विश्रान्त हुए ।
दूर दूर तक
फैली छाया
सिमिट-सिमिट कर
चरणों में आ
चरण वन्दना
करी जा रही
करी जा रही .....।
मौन-भाव को
पूर्ण गौण कर
मुक्त कण्ठ से
मुक्त शैव स्तुति
पढ़ी जा रही .....।
पढ़ी जा रही .....।

सौम्य सुगन्धित
फुल्लित पुष्पित
भीगे भावों
श्रद्धांजलियाँ
चढ़ी जा रहीं
चढ़ी जा रहीं .....।
अश्रुतपूर्वा
आज भाग्य की
धन्य धन्यतम
घड़ी आ रही
घड़ी आ रही .....।
ललित छबीली
परम सजीली
दृष्टि-सम्पदा
निज की निज में
गड़ी जा रही
गड़ी जा रही .....।

❑❑❑



# विकल्प-पंछी

चिर से छाई
तामसता की
घनी निशा वह
महा भयावह
पीठ दिखाती
भाग रही है।
जाग रही है
शनैः शनैः सो
स्वर्णाभा-सी
सौम्य सुन्दरा
काम्य मधुरिमा
साम्य अरुणिमा
ध्रुव की ओर
बढ़ी जा रही
बढ़ी जा रही .....।

शनैः शनैः बस !
शैल-समुन्नत
चढ़ी जा रही
चढ़ी जा रही .....।
तेज ध्यान में
तेज ज्ञान में
चरम वेग से
ढली जा रही
ढली जा रही .....।
स्वैर-विहारी
विकल्प-पंछी
निजी निजी उन
नीड़ों में आ
नयन मूँद कर

# करुणाई

विशाल विशालतम
निहाल निहालतम
विश्वावलोकिनी
विस्फारिता
दो आँखें
जिन में झाँकता हूँ
सहज-आप
आत्मीयता आँकता हूँ
जहाँ निरन्तर
तरंग क्रम से
असीम परिधि को
प्रमुदित करती है
तरलित करती है
करुणाई .....

पर !
लाल गुलाब की
हलकी-सी बह .....।
क्यों तैर रही है
अरुणाई .....?
बताओ इसमें क्या है ?
गहनतम गहराई .....।
हे शाश्वत सत्ता !
क्या यही कारण है ?
जो विलम्ब हुआ
आत्मीयता उपेक्षित कर
निरालम्ब हुआ
भटकता रहा
सुचिर काल तक
लौटा नहीं
रोता हुआ भी



इसी बीच
मौन का भंग होता है
और !
गौण का रंग होता है
'नहीं नहीं, यथार्थ कारण और है'
जो निकटतम है
ज्ञात होना
विकटतम है
कि
सत्ता के रोम-रोम पर
पड़ा हुआ
प्रभाव.....दबाव
परसत्ता का
राजसत्ता-राजसता की
वह परिणति.....
अरुणाई .....

अपने चरम की ओर
फैलती तरुणाई .....
उसी की यह
परछाई है.....
प्रतीत हो रही है
तेरी आँखों से
मेरी आँखों में
अपना दोष, भला हो
पर पर रोष उछालो .....।
जब नहीं होता
संयम-तोष
घट में होश
'यह श्रुति'
श्रुति सुनती है

तत्काल
आँखें खुलीं
राजस-रज.....
.....धुली
भ्रम टूट गया
श्रम छूट गया
और.....

गुरु सत्ता में
लघु सत्ता जा
पूर्ण मिली
पूर्ण घुली
मधुरिम संवेदन से
आमूल सिंचित हुआ
एक ताजगी
एकताजगी .....।

❑❑❑



# प्रति-छवियाँ

भू-मण्डल में
नभ-मण्डल में
अमित पदार्थ हैं
अमिट यथार्थ हैं
और उनमें
समित कृतार्थ हैं
अमेय भी हैं
प्रमेय चित हैं
ज्ञेय ध्येय हैं
तथा हेय हैं
जड़ता गुण से
विरचित हैं
मोहीजन से
परिचित हैं

इन सब को तुम।
नहीं जानते
हे ! जिनवर !
परन्तु ये सब
तव शुचि चित में
प्रेषित करते
अपनी अपनी
पलायुवाली
प्रति-छवियाँ
अवतरित हो
ज्ञानाकार धरती
उपास्य की उपासना
मानो ! उपासिका
करती रहती
बनकर छविमय आरतियाँ .....

यही आपकी विशेषता है
बहिर्दृष्टि निश्शेषता है
इसीलिए प्रभु
कृतार्थ हैं
बने हुए परमार्थ हैं
तुम में हम में
यही अन्तर है
तुम्हारी दृष्टि सो
अन्तर्दृष्टि है
व्यन्तर्दृष्टि नहीं
यही निश्चय नियति है
यही अन्तिम नि.....यति है..... ।
यही अन्तर्दृष्टि
निरन्तर उपास्य हो
इस अन्तर में

क्योंकि
विश्वविज्ञता स्वभाव नहीं
विभाव भी नहीं
अभाव भी नहीं
वह निरा
ज्ञेय-ज्ञायक भाव है
औपचारिक
संवेदन शून्य .....।
यथार्थ में
स्वज्ञता ही
विज्ञता है स्वभाव है
भावित भाव .....।



औपाधिक सब भावों से
परे..... ऊपर उठा बहुत दूर असंपृक्त !
और वह संवेदन
स्व का ही होता है
चाहे वह स्वभाव हो या विभाव ।
पर का नहीं संवेदन
पर का यदि हो
दु:ख का अन्त नहीं
सुख अनन्त नहीं
और फिर सन्त कहाँ ?
अरहन्त कहाँ ?
किन्तु ज्ञात रहे
स्वसंवेदन भी
सांप्रतिक तात्कालिक !

त्रैकालिक नहीं
अन्यथा
दु:ख के साथ सुख का
सुख के साथ दु:ख का
क्यों ना हो
संवेदन ! वेदन !
हे चेतन !
इतना ही नहीं
आत्म-गत अनन्तगुण
पूर्ण ज्ञान से भी
संवेदित नहीं होते
केवल ज्ञात होते
यह ज्ञात रहे
अथवा ज्ञान में
अपना-अपना

रूपाकार ले
झलक जाते स्वयं आप
ज्ञेय के रूप में
परिवर्तित प्रतिरूप में
जैसे हो वह
सम्मुख दर्पण
विविध पदार्थ
अपने अपने
रूप रंग, अंग.....ढंग
करते अर्पण
दपर्ण में ... पर ... वह
क्या विकार झलकता ?
क्या ? तजता दर्पण
आत्मीयता उज्ज्वलता ?

सो ..... मैं ..... हूँ
केवल संवेदन-शील
धवलिम-चेतन जल से
भरा हुआ लबालब ...!
तरंग-हीन
शान्त शीतल-झील
खेल खेलता
सतत सलील
शेष समग्र बस !
शून्य ... शून्य ... नील !

❑❑❑



# दर्पण में दर्प न

आखिर यह
अपार सिन्धु
क्या है सागर
अगर .....।
बिन्दु ..... बिन्दु.....
अनन्त बिन्दु
वात्सल्य सौहार्द सहित
हो कर परस्पर
मुदित-प्रमुदित
आलिंगित-आकुंचित नहीं होते।
मगर !
मगरमच्छ कच्छप
मारक विषधर अजगर
वहीं चरते हैं
वहीं चलते हैं

हिंसकों के डगर
अनेक महानगर
वहीं बसते हैं
वहीं पलते हैं
महासत्ता नागिन
फूत्कार करती
अपनी फणावली
उन्नत उठाकर
अपनी सत्ता सिंहासन
वहीं जमाती है
किन्तु काल्पनिक
इसीलिए
यह परम सत्य है

क्योंकि
धर्मी का धर्म
गुणी का गुण
प्राण है, श्वास है
यह बात निराली है
कि
बिना प्रयास प्रकाश से
प्रकाश्य प्रकाशित होते हैं
यह उनकी योग्यता है
किन्तु
प्रकाश्य या प्रकाशित में
स्व-पर प्रकाशक का
अवतरण अवकाश नहीं
यह भी बात ज्ञात रहे
कि जिनमें

उजली उजली उघड़ी
पूरी कलायें हैं
झिलमिलाये हैं
गुण-धर्म-जाति की अपेक्षा
एक से ..... लसे हैं
पर ! बाहर से
उनमें
अपने अपने
अस्तिपना
निरे.....निरे हँसे हैं
फिर ! ऐक्य कैसे ?
शिव में शिव
जिन में जिन
चिर से बसे हैं



सिन्धु अंशी नहीं है
बिन्दु अंश नहीं है उसका
बिन्दु का वंश सिन्धु नहीं है
किन्तु ! बिन्दु .....!
अंश अंशी स्वयं है
स्वयं का स्वयं आधार आधेय .....।
परनिरपेक्षित जीवन जीता है
केवल सागर ..... लोकोपचार .....
इसी से अकथ्य सत्य वह
सार तथ्य वह.....।
और पूर्ण फलित हो रहा है
कि
लय में लय होना
यह सिद्धान्त जो रहा है

अनुचित सिद्ध हो रहा है
और !
प्रकाश प्रकाश में
लीन हो रहा है
यह भी उपचार है
कारण यह है
कि
प्रकाश प्रकाशक की
अभिन्न-अनन्य
आत्मीय परिणति है
गुण-धर्म-भाव
धर्म धर्मी से
गुण गुणी से
परत्र प्रवास करने का
प्रयास तक नहीं कर सकते

निज नियति से
सुदृढ़ कसे हैं
भ्रम भ्रम है
ब्रह्म ब्रह्म है
भ्रम में ब्रह्म नहीं
ब्रह्म में भ्रम नहीं .....।
अहा ! यह कैसी ?
विधि विधान-व्यवस्था
प्रति-सत्ता की
स्वाधीन स्वतन्त्रता
परस्पर
एक दूसरे के
केवल साक्षी .....।
जिनमें कन्दर्प ..... दर्प न
कहाँ करते ?
अर्पण-समपर्ण
अपना-पन
दर्पण में दर्प न .....।

❑❑❑



# कब भूलूँ सब ?

स्वर्गीय भुक्ति नहीं
पार्थिव शक्ति नहीं
ऐसी एक युक्ति चाहिए
बार बार ही नहीं
एक बार भी अब !
बाहर नहीं आ पाऊँ
निशि दिन रमण करूँ
अपने में
द्वैत की नहीं
अद्वैत की भक्ति चाहिए
आभरण से
आवरण से
चिरकाल तक
मुक्ति चाहिए
ओ ! परम सत्ता !
अनन्त शक्ति लिये
निगूढ़ में बैठी
विलम्ब नहीं अब
अविलम्ब !
निरी निरावरण की
व्यक्ति चाहिए
भावी भटकन की
काँक्षाओं-कुण्ठाओं
डाकिनी सम्मुख न आये
विगत वनी में रहती
पिशाचिनी का
मन में स्मरण नहीं आये
स्मरण-शक्ति नहीं
विस्मरण की
शक्ति चाहिए ।

❑❑❑

# पक्षपात : पक्षाघात

शिशिर वात से
छिल सकता है
अशनिपात से
जल सकता है
गल सकता भी
हिम पात से है
पल पल पुराना
अधुनातन
पूरण गलन का
ध्रुव निकेतन
अणु अणु मिलकर
बना हुआ यह तन.....।
पर ! इन सबसे
कब प्रभावित होता ?
मानव मन !

और जिस रोग के योग में
भोगोपभोग में
बाधा आती है
भोक्ता पुरुष को
उसका
एक ओर का हाथ
साथ नहीं देता
कर्महीन होता है
उसी ओर का पाद
पथ पर चल नहीं सकता
शून्य दीन होता है
मुख की आकृति भी
विकृति होती है
एक देश !



वैद्य लोग
उसे कहते हैं
पक्षाघात रोग
किन्तु उसका
मन मस्तिष्क पर
प्रभाव नहीं
दबाव नहीं
इसीलिए
पक्षाघात ही
स्वयं पक्षाघात से
आक्रान्त पीड़ित है
किन्तु यथार्थ में
पक्षपात ही
पक्षाघात है

जिसका प्रभाव
तत्काल पड़ता है
गुप्त सुरक्षित
भीतर रहता
जीवन नियन्ता
बलधर मन पर .....।
अन्यथा हृदय स्पन्दन की
आरोहण अवरोहण स्थिति
क्यों होती है ?
किसकी करामात है यह ?
यही तो 'पक्षपात' है

सहज मानस
मध्यम तल पर
सचाई की मधुरिम
भावभंगिम तरंग
.....उठती हैं
क्रम क्रम से आ
रसना के तट से
टकराती हैं, वह
रसना तब .....
भावाभिव्यंजना
करती है
पर !
लड़खड़ाती, कहती है !
कोई धूर्त
मूर्त है या अमूर्त
पता नहीं.....।

मेरा गला घोंट रहा है
'ज्ञात नहीं मुझे'
'वही तो पक्षपात है'
किसी एक को देखकर
आँखों में
करुणाई क्यों ?
छलक आती है
और किसी का देख कर
आँखों में
अरुणाई क्यों ?
झलक आती है
किसका परिणाम है यह ?
इसी का नाम
'पक्षपात' है



पक्षपात.....!
यह एक ऐसा
गहरा गहरा
कोहरा है
जिसे
प्रभाकर की प्रखर-प्रखरतर
किरणें तक
चीर नहीं सकतीं
पथ पर चलता पथिक
सहचर साथी
उसका वह
फिर भला
कैसा दिख सकता है ?
सुन्दर सुन्दर-सा
चेहरा गहरा.....!

पक्षपात.....!
यह एक ऐसा
जल-प्रपात है
जहाँ पर
सत्य की सजीव माटी
टिक नहीं सकती
.....बह जाती
पता नहीं कहाँ ?
.....वह जाती
और असत्य के अनगढ़
विशाल पाषाण खण्ड
अधगढ़े टेढ़े-मेढ़े
अपनी धुन पर अड़े
शोभित होते.....।

भयानक पाताल घाटी
नारकीय परिपाटी
जिसमें
इधर उधर टकराता
फिसलता फिसलता जाता
दर्शक का दृष्टिपात ।
एतावता
पक्षपात पक्षाघात है
अक्षघात है, ब्रह्मघात है
इसलिए
प्रभु से प्रार्थना है
स्वीकार हो प्रणिपात !
आगामी अनन्तकाल प्रवाह में
कभी न हो
पक्षपात से
मुलाकात .....।

❑❑❑



# बोल, मुस्कान !

धरती से फूट रहा है
नवजात है
और पौधा
धरती से पूछ रहा है
कि
यह आसमान को कब छुएगा ।
छू .....सकेगा क्या नहीं ?
तूने पकड़ा है
गोद में ले रखा है इसे
छोड़ दे .....।
इसका विकास रुका है
ओ ! .....माँ .....।
माँ की मुस्कान बोलती है
भावना फलीभूत हो बेटा .....!
आस पूरी हो !
किन्तु
आसमान को छूना .....
आसान नहीं है
मेरे अन्दर उतर कर
जब छूयेगा
गहन गहराइयाँ
तब .....कहीं .....संभव हो
आसमान को छूना
आसान नहीं है .....।

❑❑❑

# डूबो मत, लगाओ डुबकी

स्व-पर पहिचान
ज्ञान पर आधारित है
आगमालोकन-आलोड़न से
गुरु-वचन-श्रवण-चिन्तन से
अपने में
ज्ञान गुण का स्फुरण होता है
पर ! सक्रिय ज्ञान
आत्मध्यान में बाधा डालता है
विकल्पों की धूल उछालता है
ध्याता की साधक दृष्टि पर ।
किन्तु वही हो सकता है
उपास्य में अन्तर्धान.....!
जिसका ज्ञान .....!
शब्दालम्बन से मुक्त हुआ है
बहिर्मुखी नहीं
अन्तर्मुखी
बहुमुखी नहीं
बन्द मुखी
एकतान .....!
यह सही है
तैरने की कला से वंचित है
उसे सर्वप्रथम
तारण-तरण तुम्बी का सहारा अनिवार्य है
उस कला में निष्णात होने तक .....!



जब डुबकी लगाना चाहते हो तुम !
गहराई का आनन्द लेना चाहते हो तुम !
तब तुम्बी बाधक है ना !
इतना ही नहीं
पीछे की ओर पैर फैलाना
आजू-बाजू हाथ पसारना
यानी ..... तैरना भी
अभिशाप है तब .....।
यह बात सत्य है
कि
डुबकी वही लगा सकता
जो तैरना जानता है
जो नहीं जानता
वह डूब सकता है
डूबता ही है
डूबना और डुबकी लगाने में
उतना ही अन्तर है
जितना
मृत्यु और जीवन में.....।

❑❑❑

# तुम कैसे पागल हो

रेत रेलित से नहीं
रे ! तिल से
तेल निकल सकता है
निकलता ही है
विधिवत् निकालने से
नीर-मन्थन से नहीं
विनीत-नवनीत
क्षीर-मन्थन से
निकल सकता है
निकलता ही है
विधिवत् निकालने से ।
ये सब नीतियाँ
सबको ज्ञात हैं
किन्तु हित क्या है ?
अहित क्या है ?
हित किस में निहित है
कहाँ ज्ञात है ? किसे ज्ञात है ?
मानो ज्ञात भी हो तुम्हें
शब्दिक मात्र .....!
अन्यथा
अहित पन्थ के पथिक
कैसे बने हो तुम !
निज को तज
जड़ का मन्थन करते हो
तुम कैसे पागल हो ?
तुम कैसे 'पाग' लहो ।

❑❑❑



# स्वयं वरण

तू तो अपना ही गीत
गुनगुनाता रहता है
रे ! स्वैरविहारी मन
जरा सुन !.....
संयम का बन्धन
बन्धन नहीं है
वरन.....।

अबन्ध दशा का
अमन्द यशा का
अभिनन्दन-वन्दन है
अन्यथा

मुक्ति रमा वह
मोहित-सम्मोहित हो
उपेक्षित कर इतरों को
संयत को ही
क्यों करती है
स्वयं वरण.....?

❑❑❑

# भीगे पंख

सूरज सर पर
कस कर तप रहा है
मैं नि:संग हूँ .....।
आसीन हूँ
सुखासन पर .....
ललाट तल से
शनै: शनै:
सरकती सरकती
भृकुटियों से गुजरती
नासाग्र पर आ
पल-भर टिकी.....
गिरती है
स्वेद की बूँद .....
वायुयान गतिवाली
स्वच्छन्द उड़नेवाली
मक्षिका के पंख पर .....!

और वह मक्षिका
भीगे पंख !
उड़ने की इच्छा रखती
पर ! उड़ ना पाती है
धरती से ऊपर
उठ न पाती

यह सत्य है कि
रागादिक की चिकनाहट
और पर का संपर्क
परतन्त्रता का
प्रारूप है .....।

❑❑❑



# उषा में नशा

उषा-काल में
उतावली से
तृषा काय की
बिना बुझाये
कहाँ भाग रहा है तू ?
मुझे पूछते हो तुम .....।
उषा में नशा करने वालो .....
निशा में मृषा चरने वालो ..... !
यह रहस्य अज्ञात होना
दशा पागल की है

दिशा चाहते हो
पाना चाहते हो
सही दशा वह !
जरा सुनो !
स्वयं यह
उषा भाग रही है
जिसके पीछे पीछे
निशा जाग रही है
जिसका दर्शन .....
'यह' नहीं चाहता अब .....।

❑❑❑

# प्राकृत पुरुष

मदन मोहिनी
रति सी मानिनी
मृदुल-मँजुल
मुदित-मुखी
मृग दृगी
मेरी मति
आज बनी है
मलिन मुखी.....म्लान
अध-खुली
कमलिनी सी
और लेटी है
एक कोने में
ना सोने में
ना रोने में
जिसे चैन है

बार बार बदल रही है
करवटें.....।
इस स्थिति में
अपने होने में भी
उसे अब ! हा !
अर्ध मृत्यु का संवेदन है
पूर्ण वेदन है
मेरी निरी
करुण चेतना
..... खरी
वहीं खड़ी खड़ी
समता की साक्षात् धरती
साहस धरी
हृदयवती सतियों में सती सी
उसे देख .....



अपने उदार अंक में
पृथुल मांसल
जंघा का बल दे
आकुलता से आहत
परम आर्त .....।
मति मस्तक को
ऊपर उठा लिया है
और अपने
प्रेम भरे
मखमल मृदुल
कर पल्लवों से
हलकी हलकी सी
सहला रही है
संवेदनशील ..... शब्दों में

संबोधित करती
साहस बाँधती
किन्तु वह
वचनामृत की प्यासी नहीं
विरागता की दासी नहीं
सरागता की अपार राशि जो रही
अपनी ही
मार्दव माँसल बाहुओं से
श्रवण द्वार बन्द कर
पीछे की ओर
दो दो हाथों से
शिर कस कर
बाँध लिया .....।

कुटिल कुटिल तम
कज्जल काले
कुन्तल बाल
भाल पर आ
बिखरे हैं
निरे निरे हो
अस्त व्यस्त
इस संकेत के साथ
कि
समुज्ज्वल-भाव-भूमि पर
अब भूल कर भी
दृष्टि-पात सम्भव नहीं .....।
यह पूर्णत: प्रकट है
कि
इस मति का अवसान काल
निकट सन्निकट है

'विनाशकाले विपरीतबुद्धि:'
'अन्ते मता सो गता'
सूक्तियाँ सब ये
चरितार्थ हो रही हैं
सूखी
गुलाब फूल की लाल पाँखुड़ी सी
जिसके युगल
अधर पल्लव हैं
जिन में
परमामृत भरा था
मृत हुआ क्या, विस्मृत हुआ ?
या किसी से अपहृत हुआ ?



यह रहस्य
किसे.....औ .....कब
अवगत हुआ है ?
बिल से अध निकली
सर्पिणी सी
मति-मुख से
बार बार बाहर आकर
अधरों को सहलाती
और सरस बनाने का
प्रयास करती
दुलार प्यार करती
लार रहित रसना .....।
और .....

समग्र अंग का जल तत्व
भीतर की तपन से
ऊर्ध्वमुखी हो
ऊपर उठा है
और यही कारण है
कि
जिस के तरल सजल
युगल लोचन हैं
जिन में अनवरत
करुणा की
सजीव तरंग
तैर कर तट तक आ रही है
तापानुपात की अधिकता से
बीच बीच में
डब-डब, डब-डब
भर आते हैं

और वे दृग बिन्दु
टप-टप, टप-टप
गोल-गोल
लाल-लाल
सरस रसाल
युगल कपोल पर
मन्द ध्वनित हो
नीचे की ओर पतित होते
सूचित कर रहे हैं
पाप का फल, प्रतिफल
अध:पतन है।
अगम अतल
पाताल.....।
अमित काल
तिमिरागार

मात्र सहचर रहेगा.....
और उसी बीच
एक अदृश्य
दिव्य स्वर उभरा.....।
शून्य में
एक बार भी
प्राकृत पुरुष का
दर्श होता
अनिर्वचनीय
हर्ष होता.....इसे
जीवन दर्पण .....आदर्श होता
तो.....फिर.....यह
क्यों व्यर्थ में
संघर्ष होता.....।



अतीत की स्मृति में
सभीत मति
डूब रही है
अधीत के प्रति
उदास ऊब रही है
उस का उर
भर भर आ रहा है
अर्थ-पूर्ण-भावों से
और आज तक
जो कुछ घटित हुआ
हो रहा है
उसे भीतर से बाहर
शब्द रूप देकर
निष्कासित करने को

एक बड़ी
विवेकभरी
उत्कण्ठा उठी है
पर !
भाग्य साथ नहीं देता
कण्ठ कुण्ठित है
केवल रुक रुक कर
दीर्घश्वास की पुनरावृत्ति
प्रकट कर रही है
भीतर अशुभतर घुटन है
पश्चाताप की ज्वाला में
झुलस रहा है
अन्तर-जगत्
इस दयनीय दृश्य को
सेवा शीलवती
मेरी चेतना

खुली आँखों से
पी रही है
मति की, चिति की
एक जाति है ना !
यही कारण है
कि
चिति भी तरल हो आई
और सरल हो आई
वैसी मति भीतर से
तरल सरल नहीं है
स्वभावशील से
गरल ही है
और दोनों के बीच
धीमे धीमे
आदान प्रदान
प्रारम्भ होता है भावों का

मति का भाव
दीनता से हीनता से भरा
प्रकट होता है
भावी काल का अनन्त प्रवाह
असहनीय विरह वेदना में
व्यतीत होगा
वह अनन्त विरह
सहचर मीत होगा
गीत संगीत होगा
मेरा तब.....।
रह रह कर नाथ की स्मृति
विरह अनल में
घृताहुति का
काम करेगी



अब चेतना मुख खोलती है
कि
पुरुष तो परुष होते हैं
और उनका
सहज धर्म है वह
हमारे लिए अभिशाप नहीं
वरदान ही है
और दुखद बन्धन
बलिदान का
अवसान है
'पुरुष को मुक्ति मिलना
विकृति से लौट
प्रकृति का प्रकृति में
आ मिलना है'
अपने में खिलना है

अपनी अपनी पूर्ण कलायें
पूर्ण खुलना है
सम्पूर्ण शुचिता लिए
चन्द्र की चाँदनी सी।
एकतत्व में सुख है
अनेकत्व में दु:ख ।
एकत्व में बन्धन नहीं
सदा स्वतन्त्रता.....
और ! मौन छा जाता है
इधर मैं 'आत्मा' पुरुष .....।
एक कोने में
बैठा हूँ स्तब्ध
नि:शब्द.....केवल.....हूँ

किन्तु मम ध्रुव सत्ता
तरल नहीं सजल नहीं
सघन हो आई
वस्तुस्थिति का
गति परिणति का
अंकन कर रही है
इस निर्णय के साथ, कि
मति से बातचीत करती
इस चिति से भी
पीठ फेर लेना-विरति लेना
औचित्य होगा
और
रोषातीत
तोषातीत
परम पुरुष की
यही तो है
'परुषता और पुरुषता'
यह प्रमदा में कहाँ
प्रकृति में.....!

❑❑❑



# अधर के बोल

सरस सलिल से
भरे हुए हो
कलुष कलिल से
परे हुए हो
इस धरती से
बहुत दूर हो तुम !
शुद्ध शून्य में
जलधर हो कर
अधर डोल रहे
इधर यह मयूर
चिर प्रतीक्षित है
आपकी इंगन-कृपा से
दीक्षित है .....।

ऊर्ध्वमुखी हो
जिजीविषा इस की
बलबती है महती
तृषातुरा है
आज तक इस के
कायिक-आत्मिक पक्ष
अमृत के बदले
जहर तोल रहे
तभी तो
अंग अंग से इस के
समग्र सत्व से
नीलिमा फूट रही है

इसलिए इसे
जोर शोर से
गरजो घुमड़ घुमड़ कर
सम्बोधित करो !
सुधा वर्षण से
शान्त शुद्ध
परमहंस बना दो इसे
विलम्ब मत करो अब .....।
ऐसे इस के
अपनी भाषा में
शुष्क नीलम
अधर बोल रहे .....।

❑❑❑

# तोता क्यों रोता